

राष्ट्रनिर्माण की परिकल्पना और पं. दीनदयाल उपाध्याय

डॉ. राजेश कुमार,

असिस्टेंट प्रोफेसर, रामलाल आनंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

राष्ट्रभावना का निर्वाह और स्वदेशी भावना के पोषक डॉ. दीनदयाल उपाध्याय का जीवन भारतीय संस्कृति के उन्नायकों में अग्रणी है। जिस राष्ट्रभावना को आज के समय विमर्श का विषय बनाया जाता है वह इनके लिए एक मानव संस्कार रहा है। अपने जीवनकाल में वे उन्ही जीवन मूल्यों को प्रचारित प्रसारित करते रहे जो राष्ट्रनिर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हों। स्वदेशी भाषा, स्वदेशी निर्माण और यहाँ की प्राकृतिक स्थापनाओं के आलोक में भारतवर्ष के नवनिर्माण पर बल देना ही उनके जीवन का उद्देश्य रहा है।

मुख्य बिन्दु: राष्ट्रवादी दृष्टिकोण, विकास के नियामक, व्यावहारिक रूप और अनुपालन

प्रस्तावना

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाये तो जिस देश में विविध संस्कृतियों और विविध धर्मों के लोग जिस देश में रहते हैं वहाँ पर राष्ट्रवाद की चुनौतियों का सामना देखने को मिलता है। इसका मुख्य कारण यह है कि सामंजस्य के अभाव और समाज के विखण्डित रूपों के कारण यह स्वाभाविक है। परन्तु, राष्ट्र सर्वोपरि है, जिस देश के उत्पादन पर हमारा पालन पोषण होता है और हमारी आजीविका का संचालन होता है निश्चित रूप से उस देश के साथ हमारी भावनाओं का जुड़ना और उसके प्रति प्रेम पैदा होना ही राष्ट्रवादी होना है। डॉ. दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रवाद के पोषक हैं। यह देश प्रेम कृत्रिम नहीं होता, यह अपने आप पैदा होता है। वे राष्ट्रवादी संस्थाओं को बहुत महत्व देते थे और अधिक से अधिक उनके निर्माण पर बल देते थे। इस प्रकार की संस्थाओं का निर्माण उनकी राष्ट्रवादी परिकल्पना थी। जब 'देश की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, औद्योगिक सभी क्षेत्रों में

गिरावट के आसार प्रकट होने लगे, ऐसे क्षणों में राजनैतिक क्षेत्र में नए नेतृत्व की आवश्यकता गूँज उठी। इसी आवश्यकता की पूर्ति में जब 1951 में डॉ. श्यामप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में अखिल भारतीय जनसंघ के निर्माण का विचार किया जा रहा था तब पं. दीनदयाल जी उपाध्याय ने 21 सितम्बर 1051 को लखनऊ में प्रादेशिक सम्मेलन बुलाकर प्रदेश जनसंघ की स्थापना की।¹ स्पष्ट है कि देश प्रेम के संरक्षण के लिए वे हमेशा ऐसा सोचते थे जिसकी आवश्यकता भविष्य में अवश्यम्भावी हो। ऐसा नहीं है कि दूसरे अन्य लोगों ने इस प्रकार की देश के नवनिर्माण संबंधी सिद्धान्तों के विषय में विचार नहीं किया, परन्तु, वे दूसरों से इस कारण भिन्न थे कि उन्होंने इसके अतिरिक्त नहीं सोचा। देश प्रेम को कई रूपों में जताया और प्रस्तुत किया जा सकता है, लेकिन इसे किस प्रकार जीवन्तता दी जा सकती है यह केवल पं. दीनदयाल जी ही जानते थे।

सामाजिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भारत की पहचान वैश्विक पटल पर है। नालन्दा और तक्षशिला जैसी शैक्षणिक संस्थाएँ

इसलिए समृद्ध थी क्योंकि वहाँ पर अर्थशास्त्र, नीति, व्याकरण और भारतीय संस्कृति की शिक्षा दी जाती थी और देश-विदेश के छात्र यहाँ अध्ययन करने के लिए आते थे। पं. दीनदयाल जी भारतीय शिक्षा पद्धति के माध्यम से राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक स्वर का उद्घोष करते हैं। उनके अनुसार 'भारतीयता की अभिव्यक्ति राजनीति के द्वारा न होकर उसकी संस्कृति के द्वारा ही होगी। विश्व को यदि हम कुछ सिखा सकते हैं तो उसे अपनी सांस्कृतिक सहिष्णुता एवं कर्त्तव्य-प्रधान जीवन की भावना की ही शिक्षा दे सकते हैं, राजनीति अथवा अर्थनीति की नहीं। उसमें तो शायद हमको उनसे ही उल्टे कुछ सीखना पड़े। अर्थ, काम और मोक्ष के विपरीत धर्म की प्रमुख भावना ने भोग के स्थान पर त्याग, अधिकार के स्थान पर कर्त्तव्य तथा संकुचित असहिष्णुता के स्थान पर विशाल एकात्मता प्रकट की है। इनके साथ ही हम विश्व में गौरव के साथ खड़े हो सकते हैं।'²

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए एक राष्ट्र और एक संस्कृति की अवधारणा का समर्थन किया है। उनका मानना है कि भारत देश एक हिन्दू बहुल देश है और हिन्दू धर्म की संस्कृति सहिष्णुता को बढ़ावा देती है और इसका मूल 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में है। इसलिए कहा जा सकता है कि पूरे भारत में हिन्दुवादी संस्कृति को बढ़ावा देना चाहिए ताकि समाज में वैमनस्य की स्थिति उत्पन्न न हो सके। वैदिक काल से भारत का जनसमुदाय मानवतावाद का पोषक रहा और अपने मन में उन विचारों और कारकों का पनपने नहीं देता जिससे समाज में प्रेम और सौहार्द की भावना में स्खलन पैदा हो सके। पं. दीनदयाल जी ने एक संस्कृतिवादी और द्वि-संस्कृतिवादी विचार के संबंध में कहा है कि 'केवल एक-संस्कृतिवादी लोग ही ऐसे हैं जिनके समक्ष और कोई ध्येय नहीं है तथा जैसा कि हमने देखा, संस्कृति ही भारत की आत्मा होने के कारण वे

भारतीयता की रक्षा एवं विकास कर सकते हैं। शेष सब तो पश्चिम का अनुकरण करके या तो पूँजीवाद का निर्माण करना चाहते हैं। अतः उनमें सब प्रकार की सद्भावना होते हुए भी इस बात की संभावना कम नहीं है कि उनके द्वारा भी भारतीय आत्मा का तथा भारतीयत्व का विनाश हो जाये। अतः आज की प्रमुख आवश्यकता तो यह है कि एक-संस्कृतिवादियों के साथ पूर्ण सहयोग किया जाए। तभी हम गौरव और वैभव से खड़े हो सकेंगे तथा राष्ट्र-विघटन जैसी भावी दुर्घटनाओं को रोक सकेंगे।'³

पं. दीनदयाल जी राष्ट्र निर्माण में अनेक आधारों पर चर्चा करते हैं, जिनमें मुख्य रूप से भारतवर्ष की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी है। भारत के अतीत में अनेक मनीषियों ने अपने गहन ज्ञान से भारतवर्ष की धरती को अपने शाश्वत ज्ञान से दृढ़ बनाया है। अतः उनके विचार और दर्शन आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। क्योंकि, 'अन्य सामाजिक तथ्यों की तरह राष्ट्रवाद भी ऐतिहासिक तथ्य है। लोक जीवन के विकास क्रम में वस्तुनिष्ठ और भावनिष्ठ दोनों प्रकार के ऐतिहासिक तत्त्वों की परिपक्वता के पश्चात राष्ट्रवाद का उद्भव हुआ।'⁴

भारतीय जनजीवन में धर्म की उपस्थिति है। कहा भी गया है कि 'धर्मो रक्षति रक्षितः' अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है। पूरे मध्य एशिया तक हिन्दू धर्म के अनुयायी अपने जीवन संस्कारों के कारण जाने जाते रहे हैं। भाषायी स्तर पर इसकी पुष्टि भी होती है कि हिन्दी का प्रभाव व्यापार के कारण यूरोप तक फैला हुआ था। परन्तु, विदेशी आततायियों ने अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दू समाज पर अनेक अत्याचार किए। यहाँ पर पं. दीनदयाल जी का विचार इस कारण से प्रबल है कि हिन्दू समाज मानसिक रूप से इतना शक्तिशाली है कि अनेक झंझावातों के कारण भी कोई आततायी इसकी भारतीय हिन्दू संस्कृति को खण्डित नहीं कर सका है। उनके अनुसार

‘भारतीय जीवन को धर्म-प्रधान बनाने का प्रमुख कारण यह था कि इसी में जीवन के विकास की सबसे अधिक निश्चिती है। आर्थिक दृष्टिकोण वाले लोग यद्यपि आर्थिक समानता के पक्षपाती हैं, किन्तु वे व्यक्ति की राजनीतिक व आत्मिक सत्ता को पूर्णतः समाप्त कर देते हैं। राजनीतिवादी प्रत्येक व्यक्ति को मतदान का अधिकार देकर उसके राजनैतिक व्यक्तित्व की रक्षा तो अवश्य करते हैं किन्तु आर्थिक एवं आत्मिक दृष्टि से वे भी अधिक विचार नहीं करते। अर्थवादी यदि जीवन को भोग-प्रधान बनाते हैं तो राजनीतिवादी उसको अधिकार-प्रधान बना देते हैं।⁵ इस प्रकार से वे एक साथ अर्थ और राजनीति की संकीर्णता को नकारते हैं, क्योंकि अर्थ और राजनीति के इस प्रारूप से राष्ट्र का संरक्षण असंभव है। किसी भी नवीन संरचना के लिए संस्कृति महत्व रखती है, फिर चाहे वह राष्ट्र ही क्यों न हो। आगे वे लिखते हैं कि ‘संस्कृति को ही हमने धर्म कहा है। अतः जब कहा जाता है कि भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है तो इसका अर्थ मजहब, मत या रिलीजन नहीं, किन्तु यह संस्कृति ही होता है।⁶

भारतीय दर्शन और संस्कृति के संबंध में दीनदयाल जी की आस्था गहन रही है और उनके द्वारा विरचित साहित्य से पता चलता है कि उनके व्यक्तित्व का निर्माण ही भारतीय दर्शन रहा है। मानवतावाद और राष्ट्र निर्माण जैसी अवधारणाएँ विश्व भर के साहित्य इतिहास में देखने को मिलती हैं। इसके साथ-साथ यह भी देखना है कि क्या विश्व में जीवन मूल्यों का निर्माण इसके आधार पर होता है या फिर ये औपचारिक मात्र हैं। इसे यदि गहराई से जानने आवश्यकता है तो सबसे पहले हमें दीनदयाल जी के साहित्य का ही अध्ययन करना होगा। वे लिखते हैं कि ‘भारतीयता की अभिव्यक्ति राजनीति के द्वारा न होकर उसकी संस्कृति के द्वारा ही होगी। विश्व को भी यदि हम कुछ सिखा सकते हैं तो उसे अपनी सांस्कृतिक सहिष्णुता एवं कर्तव्य-प्रधान जीवन की भावना की ही शिक्षा दे

सकते हैं, राजनीति अथवा अर्थनीति की नहीं। उसमें तो शायद हमको उनसे ही उल्टे कुछ सीखना पड़े। अर्थ, काम और मोक्ष के विपरीत धर्म की प्रमुख भावना ने भोग के स्थान पर त्याग, अधिकार के स्थान पर कर्तव्य तथा संकुचित असहिष्णुता के स्थान पर विशाल एकात्मकता प्रकट की है। इनके साथ ही हम विश्व में गौरव के साथ खड़े हो सकते हैं।⁷

राष्ट्रवाद का प्रचार दीनदयाल जी का सामाजिक अवलम्ब था। ‘पांचजन्य’, ‘राष्ट्रधर्म’ और ‘दैनिक स्वदेश’ आदि पत्रिकाओं के संपादन के अतिरिक्त भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहते हुए वे भारत की सांस्कृतिक विचारधारा को जनमानस तक पहुँचाने में सफल रहे। वे एक प्रकार से भारत के सांस्कृतिक समूह के प्रणेता रहे हैं। भारतीय दर्शन और वेदान्त आदि को उन्होंने अपनी पत्रिकाओं और जनसन्देशों के माध्यम से लोगों में जागृति पैदा की। अपने जीवन मूल्यों और राष्ट्रवादी विचारधारा के कारण पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का नाम राष्ट्रनिर्माण के कुशल शिल्पियों में अग्रणी है।

निष्कर्ष

मन के आन्तरिक भावों के अनुसार ही मनुष्य का व्यावहारिक जीवन निर्मित होता है। राष्ट्रवाद कोई सिद्धान्त नहीं है, यह तो भौगोलिक धर्म और आस्था का द्योतक है। यदि हम अपने या मनुष्य के पोषक आधारों और कारकों का ध्यान रखें तो निश्चित रूप से धर्म और संस्कृति को अपने समीप पायेंगे। इसलिए व्यक्ति यदि राष्ट्रवादी है तो वह धर्म परायण है और अपनी संस्कृति का अनुकर्ता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय के दर्शन को समझने का अर्थ है, राष्ट्र को समझना, इसलिए कहा जा सकता है कि देश का निर्माण अर्थ और राजनीति से नहीं होता, अपितु धर्म और संस्कृति से होता है। पं. दीनदयाल जी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और भारतवर्ष के सच्चे सिपाही

रहे हैं और इसी कारण उनका संगठन की अवधारणा और उसके अनुपालन में विश्वास है। उनके द्वारा राष्ट्रनिर्माण की परिकल्पना का आधार एक समावेशित विचारधारा रहा है, जिससे सशक्त भारत का निर्माण किया जा सकता है। अपने देश

को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से तभी समृद्ध किया जा सकता है जब भारतीय धर्म और संस्कृति का अनुपालन प्रत्येक नागरिक की आत्मा से होगा।

¹ राष्ट्र चिन्तन, दीनदयाल उपाध्याय, पृ. 4

² राष्ट्र चिन्तन, दीनदयाल उपाध्याय, पृ. 10

³ राष्ट्र चिन्तन, दीनदयाल उपाध्याय, पृ. 15

⁴ भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, प्रयागदत्त त्रिपाठी, प्राक्कथन, पृ. 1

⁵ राष्ट्र चिन्तन, दीनदयाल उपाध्याय, पृ. 9

⁶ राष्ट्र चिन्तन, दीनदयाल उपाध्याय, पृ. 9

⁷ राष्ट्र चिन्तन, दीनदयाल उपाध्याय, पृ. 10